RESEARCH PAPER

RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
e-ISSN: 2455-3085 | Vol.06 | Iss.10 | October2021 | pp. 95-97
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

दलित आत्मकथा : सामाजिक उत्थान और विवेचना

डा0 वन्दना शर्मा

एसोसियेट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर (गाजियाबाद)–201204

Abstract

अनुभव अथवा स्वानुभूति का लेखन निश्चित रूप से अधिक विश्वसनीय, अधिक भाव आप्लावित,अधिक व तथ्यपरक होता है। इसी सन्दर्भ में स्त्री विषयक साहित्य एवं दलित साहित्य को देखा जाना चाहिए। गैर दलित साहित्यकार व्यक्ति के तौर पर स्वयं की वैचारिकी को ही श्रेष्ठतर दिखने में वास्तविकता से प्राय: दूर निकल जाते है। सामाजिक वैषम्य एवं असमानता को दूर करना, रेखांकित करना किसी भी लेखक व सामाजिक कार्यकर्ता का दायित्व अवश्य है। किन्तु उसे अतिरंजित बनाने से तो विषमता, असमानता, सामंजस्य को बढ़ावा ही मिलता है। क्यों उत्पीड़क उस असत्य से आहत आक्रोशित होता है ओर उत्पीडित के प्रति उसकी दुर्भावना बढती है।

दलित साहित्य में इसीलिए दलित साहित्यकारों को अधिक विश्वसनीयता से पढ़ा जाना चहिए।

Keywords: *स्वानुभूति की प्रमाणिकता, समुदाय की पहचान, आत्मकथाकार का समाज, बहुसंख्यक आबादी की अस्मिता, व्यक्तिगत महत्वकाक्षाएं, अनुभव से साक्षात्कार, स्वात:सुखाय साहित्य के दूरगामी प्रभाव*

Article Publication

Published Online: 13-Oct-2021

*Author's Correspondence

डा0 वन्दना शर्मा

एसोसियेट प्रोफेसर–हिन्दी विभाग, मुलतानीमल मोदी कॉलेज, मोदीनगर (गाजियाबाद)–201204

vandanasharma911969@gmail.com

10.31305/rrijm.2021.v06.i10.016

© 2021The Authors. Published by RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary.This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

दलित साहित्य अनुभूति की प्रमाणिकता को सबसे अधिक महत्व देता है और यही कारण है कि दलित साहित्य की प्रवृत्ति गत विधाओं में आत्मकथा का स्थान सर्वोपरि माना जा सकता है। मराठी से शुरू हुए दलित आत्मकथाओं के सफर में बहुत से महत्वपूर्ण मोड़ उपस्थित हुए हैं और आज भारत की प्रत्येक भाषा में सशक्त और सक्षम दलित आत्मकथाएं लिखी जा रही हैं। आत्मकथाओं के माध्यम से दलित साहित्य ने नई-नई ऊंचाइयों को प्राप्त किया है और साहित्य में एक प्रतिगामी प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए, सही मायने में प्रगतिशील का को व्याख्यायित करने का कार्य किया है। दलित आत्मकथाएं, दलित साहित्य में प्रतिमान के रूप में स्थापित अनुभूति की प्रमाणिकता को सर्वाधिक महत्व देते हुए उसे ही अपने समाज की सच्चाई का पुख्ता प्रमाण बनाने का कार्य करती है। राजेंद्र यादव के शब्दों में–"गैर दलित अपनी आत्मकथा में अपने व्यक्तित्व के बनने, निखरने की बात करता है, दलित की कोशिश अभी भी अपने साथ-साथ समुदाय की पहचान भी है। लेकिन दलित लेखक जिन अपमानजनक स्थितियों में रहा है उनको स्वीकार करने के लिए एक बहुत बड़े साहस की जरूरत है जो सवर्ण लेखक नहीं कर सकता। जिस सामाजिक और जन्मगत अपमान से उसे गुजरना होता है वह इसकी मुख्य थीम है…दलित का मुख्य काम यह है कि हमें कहां कहां पर अपमानित, वंचित और दलित किया गया इसके जिम्मेदार कौन थे। इस तरह सवर्ण आत्मकथाकर का समाज अमूर्त होता है, दलित का ठोस और साकार जो इसका दमनकर्त्ता है। फर्क सम्मान और अपमान का है।"[i] दलित आत्मकथाओं के लेखन की प्रसिद्धी, एवं दलित साहित्य में उसके महत्व को समझना भी आवश्यक है। दलित आत्मकथाओं के उभार के कुछ विशेष कारण रहे हैं और इन्हीं कारणों से इन आत्मकथाओं के प्रति दलित समुदाय का विशिष्ट झुकाव संकेतित किया जा सकता है।

दलित समुदाय शोषण के दमनकारी चक्र में सदियों से पिसता आ रहा है और उसकी अस्मिता को इतिहास एवं समाज में हमेशा धुंधला करने की कोशिश की जाती रही है। दलित साहित्य में अस्मिता का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण रहा है। यह अस्मिता सामूहिक शोषण के विभिन्न पहलुओं ना सिर्फ प्रस्तुत करती है बल्कि तार्किक ढंग से इस बात को भी सिद्ध करती है कि सत्ता में बैठे वर्गों ने मानवीय अस्मिता को भी खांचों में डालकर परिभाषित किया है। उनके लिए बहुसंख्यक आबादी की अस्मिता कोई मायने नहीं रखती, मानवीयता अथवा

मनुष्यता की परिभाषा केवल और केवल कुछ वर्गों के हितों और लाभ से निर्धारित होता रहता है। दलित आत्मकथाएं इसे तार्किक ढंग से प्रस्तुत करते हुए समाज में उपस्थित दोहरे चरित्र को सामने लाने का प्रयास भी कहा जा सकता है। इस दोहराव को प्रस्तुत करके ही इसे बदलने की आवश्यकता को अधिक बेहतर ढंग से पाठक के समक्ष रखा जा सकता है। महत्वपूर्ण है कि- "दलित आत्मकथाकारों ने इस तरह के खतरे उठाए हैं। इसके बावजूद कि ऐसा करने से उनके पारिवारिक रिश्ते टूटे हैं, मित्रों का साथ छूटा है और उन्हें अपनी जात-बिरादरी वालों का गुस्सा तथा विरोध झेलना पड़ा है। यह सब झेलने की शक्ति और विरोधियों का मुकाबला करने का साहस सब में नहीं होता। जिस लेखक में इन खतरों को उठाने का साहस होता है, वही आत्मकथा लिख सकता है, लिखता है।"[vii] आत्मकथाकारों अपनी सामाजिक सच्चाई को प्रस्तुत करने के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को भी दाव पर लगाया है और उस की अपेक्षा सामाजिक परिवर्तन को चिन्हित करने पर अधिक बल दिया है। इन आत्मकथा हो में व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाएंप्रकट नहीं होती बल्कि सामाजिक सच्चाई अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।यही कारण रहा कि दलित समुदाय के भीतर चेतना का आवाहन हो अथवा सामाजिक स्तर पर मानसिकता को उद्वेलित करने का प्रयास, सभी स्तरों पर दलित आत्मकथाओं की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका आज के समय में हमारे समक्ष उपस्थित होती है।

दलित साहित्य के उद्भव के बीज हमें डॉ. अंबेडकर द्वारा मूलगामी परिवर्तनों के लिए किए गए जन आंदोलनों के बीचपनपते हुए दिखाई देते हैं। दलित साहित्य दलित जागृति के माध्यम से ही प्रचारित एवं प्रसारित हुआ। दलित साहित्य आरंभ से ही अपने समाज की सच्चाई को सामने लाने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई देता है। दलितों ने साहित्य के माध्यम से उन पक्षों को भी उद्घाटित किया जो लंबे समय तक अवांछित और अस्पृश्य रहे थे। इस साहित्य ने बनी बनाई सभी कसौटियों को धत्ता बताकर साहित्य के उस रूप पर बल दिया जो जीवन की सच्चाई को अपने केंद्र में लेकर चलता है। इसी सच्चाई एवं अनुभव की प्रामाणिकता के बल ने दलितों को बार-बार प्रेरित किया कि वे अपने समाज को जोड़ने के लिए इन्हीं सच्चाईयों के सामूहिक बोध को विकसित करें। इसी क्रम में हमें आत्मकथाएं विकसित होती हुई दिखाई देती हैं। प्रसिद्ध आलोचक एवं विमर्शों के प्रबल समर्थ राजेंद्र यादव अपने एक साक्षात्कार में दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में महत्वपूर्ण बिंदुओं को उद्घाटित करते हुए उल्लेखित करते हैं कि- "जबकि दलित की आत्मकथा उसके जन्म से ही शुरू हो जाती है, स्त्री की तरह यह एक अजीब चीज लगती है की सवर्णों की आत्मकथाएं तब लिखी गई जब सफलता के एक बिंदु पर वह पहुंचे और दलित ने आत्मकथाएं उस समय लिखी जब वह चेतन हुआ और स्थितियों को समझने लगा यानी दलित होने का बोध ही उसकी आत्मकथा है। इस तरह से दलित की आत्मकथा अपने आप और अपनी स्थितियों को समझने की प्रक्रिया है।"[viii] आत्मकथाओं के संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि मुख्यधारा की आत्मकथाएं व्यक्तिगत गतिविधियों एवं सफलताओं से जुड़ी हुई है वहीं दूसरी और दलित की अभिव्यक्ति उसके सामाजिक सच्चाई का सच्चा प्रस्फुटन है। दलित अपनी आत्मतुष्टि के लिए आत्मकथा नहीं लिखता है उसे तो अपने समाज के लिए इन आत्मकथा के माध्यम से खड़े होने की आवश्यकता दिखाई पड़ती है। वह अपने समाजको उस रूप में नहीं देखना चाहता जिस रूप में वह अब तक दिखाई पड़ता रहा है, और निरंतर शोषण की प्रक्रिया चलती दिखाई देती है।जस की तसस्थितियों को नकारते हुए नए के आवाहन के प्रति दलित आत्मकथा का बहुत अधिक जागरूक दिखाई देती है। राजेंद्र यादव यह साफ करते हैं कि आत्मकथाओं को जिस प्रकार से देखे जाने की परंपरा साहित्य में रही है अगर उसी परंपरा में दलित आत्मकथाओं को भी देखा जाता रहा तो उसके महत्व को कभी समझा ही नहीं जा सकेगा। दलित आत्मकथा एवं आत्मकथा की तुलना में बिल्कुल विपरीत परिस्थिति एवं मनोदशा से ही जन्म लेती है।

इन दलित आत्मकथाओं ने नई इबारत लिखने का कार्य किया है। यह एक नई शुरुआत थी क्योंकि विश्व के सभी अस्मितापरक साहित्य अभिव्यक्तियों में अपने अस्मिता के माध्यम से अभिव्यक्ति विरोध एवं विद्रोह को स्थापित करने का उपक्रम भी रहा है। भारत में यह दलित साहित्य के विषय में सवर्था सत्य है। आधुनिक साहित्य वैसे भी स्वान्तःसुखाय मात्र नहीं रह गया है। साहित्य अभिव्यक्ति के दूरगामी प्रभाव किसी भी समाज को दिशा देने का कार्य भी करता है। हिंदी में दलित साहित्य मराठी एवं दक्षिण भारतीय भाषाओं के बाद ही विकसित हुआ किंतु उस परंपरा को आगे बढ़ते हुए दलित-हिंदी आत्मकथाओं की अपनी यात्रा भी उल्लेखनीय रही है, यह भी विचारणीय है कि, "साठ के दशक में दलित आत्म-कथाओं का आना साहित्य में किसी जलजले से कम नहीं था। पहले यह तूफान महाराष्ट्र में आया फिर हिंदी साहित्य में भी इसे आना ही था। साहित्य में इसे हम परिवर्तन का क्रांतिकारी दौर भी कह सकते हैं। सामाजिक बदलाव की इस धारा का किसी ने समर्थन किया तो किसी ने विरोध। कहीं सहमति थी कहीं असहमति। दलित साहित्य में सबकुछ यथार्थ था। सुंदर ढंग से बुनाई करने का दलित साहित्यकारों को वक्त ही कहां मिला। दलित साहित्य के जीवन से रिश्ते रहे। आंदोलन उनकी ऊर्जा रही। मेरी राय में वह जीवन उनका अपना है। उसे उन्होंने अपनी मर्जी से जीने की शुरूआत की। आखिर कब तक वे हिंदू धर्म की परम्पराओं तथा प्रथाओं को ओढ़ते-बिछाते रहते, कब तक वे सामंतों, पुरोहितों के सामने याचक बने खड़े रहते? देर से ही सही उन्होंने अपने फैसले स्वयं लिये।"[iv]अभिव्यक्ति की सार्थकता पर हिंदी दलित आत्मकथाओं ने बल दिया, न कि उसके शिल्प विधान अथवा सौंदर्य-बोध पर। वैसे भी दलित साहित्य सभी प्रकार के सौंदर्य बोध का नकार ही करते हुए अपना रास्ता बनाता है।

हिंदी में जब मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम जैसे हिंदी प्रदेशों के दलित चिंतकों की आत्मकथाएँ प्रकाशित हुई तब हिंदी पट्टी के समाज में व्याप्त मानसिकता पर कुठाराघात हुआ। हिंदी पट्टी सबसे अधिक दोहरी मानसिकता का संवहन करती है, उसको हिंदी के दलित आत्मकथाओं ने ही प्रकट करने का प्रयास किया। इस तरह हिंदी में दलित आत्मकथाओं की बानगी अलग ही दिखाई पड़ती है। दलित चिंतक रमाशंकरकठेरिया लिखते है - "यह दलित आत्मकथाएं, दलित समुदाय की वेदना का सर्जनात्मक दस्तावेज हैं। यह बात अलग है कि अभी यह दलित आत्मकथाएं अपनी विद्रोही चेतना और प्रचार पाने की ललक में साहित्यिक प्रति मानकों या तो अनदेखा कर देती हैं या जानबूझकर उनका अतिक्रमण करती है।"[v] हिंदी में यह परंपरा भले ही देर से शुरू हुई किंतु आज दलित आत्मकथाओं की सुदृढ़ परंपरा हमें हिंदी में भी विकसित होती हुई दिखाई देती है।दलित अभिव्यक्ति की अपनी प्रखरता है, जो उसे विशिष्ट एवं प्रभावी बनाती है। एवं बौद्धिक रूप से भी सामाजिक परिवर्तनों के लिए जमीन का निर्माण करने का कार्य करती है।

हिंदी में दलित आत्मकथाओं के विकास के पीछे दलित समाज की वह चेतना सबसे महत्वपूर्ण है जो समाज के शोषण-चक्र पर प्रहार करते हुए बेहतर समाज की परिकल्पना करती है। मराठी एवं दक्षिण भारतीय भाषाओं के चिंतकों ने सबसे पहल की और इसी क्रम में आज हिंदी में भी दलित समुदाय आत्मकथाओं को अपने विद्रोह का प्रतिरूप बना कर प्रस्तुत कर रहा है। आज हिंदी में हमें जो परंपरा दिखती है वह इस बात का भी प्रतीक है कि आने वाले समय में आत्मकथा संसार में दलित अभिव्यक्ति अपनी प्रतिनिधि भूमिका को प्रस्तुत करेंगे।

संदर्भ

[i]यादव, राजेंद्र: जवाब दो विक्रमादित्य, वाणी प्रकाशन,2009, पृष्ठ संख्या 38

[ii]https://www.forwardpress.in/2020/10/bahujan-literature-autobiography-hindi/

[iii]यादव, राजेंद्र: जवाब दो विक्रमादित्य, वाणी प्रकाशन,2009, पृष्ठ संख्या 40

[iv]नैमिशराय,मोहनदास:नवनीत,अप्रैल 2016, https://www.navneethindi.com/

[v]कठेरिया, रामशंकर: दलित साहित्य :नई चुनौतियां,प्रभात प्रकाशन, 2016,पृष्ठ 20